फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के विविध आयाम

I

फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष कठिन दौर से गुजर रहा है। इज़रायली जियनवादी शासकों के घृणित मंसूबों, अमरीकी साम्राज्यवाद की कुटिल चालों में उलझा हुआ यह मुक्ति संघर्ष असंख्य कुर्बानियों के बावजूद अपनी सफलता से काफी दूर है। दुनिया में मौजूद वर्ग शक्तियों का सन्तुलन आज साम्राज्यवाद और प्रतिक्रियावादी तीसरी दुनिया के शासकों के पक्ष में होने के कारण फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष घात–प्रतिघात से घिरा हुआ है। इज़रायली जियनवादी आज से दस वर्ष पूर्व जिस ओस्लो समझौते के लिये राजी हुये थे, उसे भी आज अपने पैरों तले कुचल रहे हैं। इज़रायल का प्रधानमन्त्री अरेल शोरेन यह कहने में नहीं हिचकिचाता है *''ओस्लो का अस्तित्व नहीं है, कैम्प डेविड का अस्तित्व नहीं है और न ही टाबा का''* अरेल शोरेन गाजा पट्टी और वेस्ट बैंक में किसी भी ऐसे फिलिस्तीनी को नहीं देखना चाहता जो कि मुक्तिकामी है। अरेल एक व्यक्ति न होकर इज़रायली शासक वर्ग के सबसे प्रतिक्रियावादी हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है। पिछले दस वर्षों में गाजा पट्टी और वेस्ट बैंक में दर्जनों नई यहूदी बस्तियां बसाई गई हैं। अमेरिका में बैठे यहूदी अरबपति खुले हाथों से इन बस्तियों के लिये पैसा देते रहे हैं।

ओस्लो समझौते से अस्तित्व में आये फिलिस्तीनी आथोरिटी के ''राष्ट्रपति'' फिलिस्तीन लिबरेशन आर्गनाइजेशन (PLO) के चेयरमैन यासिर अराफात, ओस्लो समझौते को लागू करवाने के लिये साम्राज्यवादियों से दरकार करते फिर रहे हैं, परन्तु कोई सुनने वाला नहीं है। यासिर अराफात तीसरी दुनिया और अरब देशों के शासकों से उम्मीद पाले हुये हैं कि वे अमेरिका और इज़रायल पर दबाव बनायेंगे और वे एक–एक कर पीछे हटते चले गये हैं। किसी जमाने में इज़रायल, अरब और तीसरी दुनिया में अछूत समझा जाता था, परन्तु बदली हुयी विश्व परिस्थिति में इज़रायल के साथ राजनैतिक, कूटनीतिक, सामरिक, आर्थिक सम्बंध बनाने के लिये इच्छुक देशों की संख्या बढ़ती जा रही है।

पहले इन्तिफादा 1987 और दूसरे इन्तिफादा 2000 के बीच मात्र 13 वर्षों का फासला है परन्तु दुनिया में इस बीच में भारी परिवर्तन हुये हैं। दुनिया की दूसरी बड़ी महाशक्ति सोवियत–संघ का पतन हो गया और रूस अभी भी अपने आपको संभाल नहीं पाया है। और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उसकी हैसियत पहले जैसी तो कतई नहीं रही। पश्चिम एशिया में कार्यरत और अपने हितों के लिये एक प्रमुख साम्राज्यवादी शक्ति इस तरह से पीछे हट गयी और अमेरिकी साम्राज्यवाद को अपना प्रभुत्व बढ़ाने का मौका मिल गया। यूरोपीय यूनियन एक आर्थिक, राजनैतिक शक्ति के बतौर भी इस बीच में उभरने लगा तथापि अमेरिका साम्राज्यवादी विश्व–व्यवस्था का नेता बना हुआ है। इराक (1991) कोसोवो, अफगानिस्तान (और फिर से इराक) उसके हमले के निशाने पर हैं। तीसरी दुनिया के शासकों ने यद्यपि साम्राज्वाद विरोधी मुद्रायें '80 के दशक में ही छोड़नी शुरू कर दी थीं, अब तो वे निर्लज्जता पूर्वक साम्राज्यवाद से सांठ–गांठ कर रहे हैं। ऐसी बदली हुयी विश्व परिस्थिति में फिलिस्तीनी जनता अपना मुक्ति संघर्ष चला रही है।

साम्राज्यवादी शक्तियों और तीसरी दुनिया के शासकों ने जहाँ फिलिस्तीन के जनवादी अधिकारों की अनदेखी जारी रखी हुयी है वहीं दुनिया में फिलिस्तीनी जनता के प्रति समर्थन दिनों दिन बढ़ रहा है। इज़रायली शासकों के प्रति नफरत दुनिया के मेहनतकशों और इंसाफ पसंद लोगों में बढ़ रही है। ऐसा ही कमोबेश इज़रायल के भीतर हो रहा है। यूरोप, अमेरिका, एशिया में फिलिस्तीन के समर्थन में होने वाले जन–प्रदर्शन इस भावना को अभिव्यक्त करते रहे हैं। इज़रायली सैनिकों के छोटे से हिस्से द्वारा फिलिस्तीनियों पर हमले से इनकार करने की घटना दिखलाती है कि इज़रायली शासकों की नीतियों के प्रति आम इज़रायली अवाम में आक्रोश है। समकालीन विश्व परिस्थिति का यह एक अन्य पहलू है जिससे भविष्य में सार्थक परिणाम निकलेंगे जो फिलिस्तीनी की जनता के मुक्ति संघर्ष की राह को सुगम बनायेंगे।

आज तीसरी दुनिया मूलतः साम्राज्यवाद के साथ आर्थिक नव–औपनिवेशिक सम्बंधों में बंधी हुयी है। दुनिया के आर्थिक नव–औपनिवेशिक चरण में प्रवेश कर जाने से ऐतिहासिक तौर पर साम्राज्यवाद कमजोर पड़ा है, पीछे हटा है परन्तु समाजवाद की अनुपस्थिति से तात्कालिक तौर पर साम्राज्यवाद आक्रामक हुआ है। साम्राज्यवाद अपने लाख चाहने के बावजूद दुनिया को औपनिवेशिक या नव औपनिवेशिक अवस्था में नहीं धकेल सकता है। प्रत्येक राष्ट्र की औपचारिक राजनैतिक–स्वतंत्रता और सम्प्रभुता को मानना, सम्मान करना शक्तिशाली से शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश के लिये भी

बाध्यकारी होता गया है। यह अनायास नहीं है कि अपने निर्माण में सैकड़ों विघ्न–बाधाओं के बावजूद फिलिस्तीनी राष्ट्र को औपचारिक मान्यता मिल चुकी है, तमाम देशों में पिछले कई वर्षों से फिलिस्तीनी दूतावास कार्यरत् हैं। फिलिस्तीनी राष्ट्र–राज्य को औपचारिक से वास्तविक अस्तित्व ग्रहण करना है। इसमें सबसे बड़ी बाधा बनकर खड़े हैं प्रतिक्रियावादी इज़रायली जियनवादी शासक–वर्ग तथा अमेरिकी साम्राज्यवादी।

प्रस्तुत आलेख में फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के विविध आयामों का एक विश्लेषण पेश किया गया है। फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ आलेख में इस संघर्ष की जटिलता पेश की गयी है।

II

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

औपनिवेशिक अतीत और निरन्तर साम्राज्यवादी षडयन्त्र

फिलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में ही शुरू होने लगा था। प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध के पहले फिलिस्तीन आटोमन (तुर्की) साम्राज्य का हिस्सा था। प्रथम साम्राज्यवादी विश्व युद्ध के समय तुर्की, जर्मनी व आस्ट्रिया जैसी साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ था। पहले साम्राज्यवादी विश्व युद्ध में जर्मनी–आस्ट्रिया, तुर्की गुट की करारी पराजय के साथ, इनके एशिया–अफ्रीका में मौजूद उपनिवेशों को लेकर फ्रांस और ब्रिटेन में घमासान मची। फ्रांस और ब्रिटेन विजयी साम्राज्यवादी शक्तियां थे। आटोमन साम्राज्य का हिस्सा रहे पश्चिम एशिया के देशों को लेकर फ्रांस–ब्रिटेन में बंदर–बांट शुरू हुयी।

साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच मची इस बंदर–बांट को ''सभ्य'' शब्द दिया गया और यह सभ्य शब्द था–मेण्डेट व्यवस्था। मेण्डेट व्यवस्था के तहत फिलिस्तीन, ट्रांस जार्डन व इराक–ब्रिटेन के उपनिवेश बने जबकि लेबनान व सीरिया, फ्रांस के उपनिवेश बने। प्रथम विश्व युद्ध के बाद से लेकर दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद तक फिलिस्तीन, ब्रिटेन का उपनिवेश बना रहा।

प्रथम विश्व युद्ध के पहले तक फिलिस्तीन मूलतः अरब मुस्लिम बहुल मुल्क था। अरब आबादी ज्यादातर ग्रामीण इलाकों में बसी हुयी थी। और जो यहूदी व इसाई आबादी थी, वो शहरों में बसी हुयी थी। 1914 में फिलिस्तीन की कुल जनसंख्या लगभग 6 लाख 90 हजार थी जिसमें 5 लाख 35 हजार मुस्लिम थे जबकि यहूदियों की संख्या लगभग 85 हजार थी। यहूदियों की एक छोटी संख्या हमेशा से फिलिस्तीन में रह रही थी। मुस्लिम और यहूदियों के बीच बीसवीं सदी के पूर्व साम्प्रदायिक संघर्ष नहीं था।

फिलिस्तीन में यहूदियों के विशिष्ट राष्ट्र या नेशनल होम (National Home) बनाने की मांग उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों में होने लगी थी। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में ही यूरोप में यहूदियों के खिलाफ घृणित नस्ली साम्प्रदायिक प्रचार प्रारम्भ हो चुका था। जारकालीन रूस में तो यहूदियों के खिलाफ इस प्रचार ने यहूदियों के नरसंहार का रूप धारण कर लिया। रूस, पोलैण्ड, जर्मनी आदि देशों में यहूदियों के खिलाफ घृणा और नफरत का माहौल बनाने में तत्कालीन शासकों का खुला हाथ था। यह वही समय है जब यूरोप की ज्यादातर औपनिवेशिक शक्तियां संकट के दौर से गुजर रही थीं।

फिलीस्तीन में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में यहूदियों का यूरोप से आना शुरू हो गया। यहूदियों की बस्तियां फिलिस्तीन में बसनी शुरू हो गयीं। ब्रिटेन में बसे यहूदी पूंजीपतियों ने इसमें प्रत्यक्ष रूचि लेना और ऐसी बस्तियों को फिलिस्तीन में बसाने के लिये धन देना शुरू किया। उत्पीड़ित मेहनतकश यहूदियों के अतिरिक्त मध्यमवर्ग और पूंजीपति वर्ग के सदस्य यहूदी भी अपने राष्ट्र–राज्य के लिये प्रयासरत होने लगे। यूरोप में 'यहूदी समस्या' साम्राज्यवादी–पूंजीवादी संकटों का परिणाम थी और इस संकट का समाधान एक साम्राज्यवाद–पूंजीवाद विरोधी समाजवादी क्रान्ति में निहित था। सोवियत–संघ में 1917 में हुयी समाजवादी क्रान्ति ने सफलतापूर्वक जातीय और राष्ट्रीयता की समस्या का समाधान आत्म–निर्णय के अधिकार तथा पूर्ण बराबरी के द्वारा खोज डाला था। परन्तु शेष यूरोप पूँजीवादी साम्राज्यवादी सड़ांध में ही जी रहा था।

पश्चिम एशिया में अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिये ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने उत्पीड़ित यहूदियों की नेशनल होम (National Home) की मांग के समर्थन में 1970 में बालफोर घोषणा (Balfour Declaration) की। ब्रिटेन

में बसे यहूदी पूंजीपति इसके पीछे थे। पहले विश्व युद्ध के बाद जब फिलिस्तीन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आ गया तो यहूदी अपने राष्ट्र–राज्य के प्रति अधिक आशावान हो गये। फिलिस्तीन के मूल निवासी, इस इज़रायली राष्ट्र–राज्य के खिलाफ थे। फिलिस्तीन में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने दोनों कौमों को एक दूसरे से भिड़ाने की घृणित चालें चलना शुरू किया। फिलिस्तीन यहूदी–मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों की भूमि बन गया।

लगभग इसी समय यूरोप में, फासिस्ट–नाजीवादी शक्तियों का पहले विश्व युद्ध के बाद तेजी से प्रादुर्भाव हुआ। यहूदियों का सबसे भीषण दमन जर्मनी में हिटलर के समय में हुआ। लाखों की संख्या में यहूदियों को गैस चैम्बरों में धकेल दिया गया और लाखों का कत्लेआम हुआ। यूरोप से यहूदियों का तेजी से पलायन हुआ। और हजारों की संख्या में यहूदी फिलिस्तीन आने लगे। यूरोप में हुये भयानक अत्याचारों से त्रस्त यहूदियों के बीच अपने राष्ट्र–राज्य की मांग जोर पकड़ने लगी तथा जुझारू यहूदी राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। यहूदी यूरोप में स्थानीय आबादी में बढ़ती बेरोजगारी, गरीबी व अन्य सामाजिक संकटों के समय शासक वर्गों द्वारा फैलाये गये घृणित फासीवादी–नाजीवादी प्रचार के आसान शिकार बने थे। घोर अपमान और उत्पीड़न के शिकार यहूदियों को फिलिस्तीन में बसाने से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अपने हित सध रहे थे, वहीं यहूदी अपने धार्मिक मिथकों के आधार पर इज़रायल को अपने मूल स्थान के रूप में लेते थे जो कि फिलिस्तीन में था। अमेरिका और यूरोप में बसे धनी यहूदी पूंजीपति वर्ग भी अपने राष्ट्र–राज्य के लिये पूरी तरह से सक्रिय हो चुके थे।

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति होते–होते फिलिस्तीन में यहूदियों की संख्या 6 लाख पचास हजार हो चुकी थी। उत्पीड़ित समुदाय के रूप में यहूदियों के प्रति विश्वव्यापी सहानुभूति थी। जुझारू यहूदी राष्ट्रीय आन्दोलन का नतीजा था कि यहूदी राष्ट्र–राज्य की मांग को दुनिया में स्वीकारा जाने लगा। 14 मई 1948 को इज़रायल के रूप में नये राष्ट्र की घोषणा यहूदी राष्ट्रवादियों ने कर दी। इज़रायली राष्ट्र को तुरन्त ही सोवियत–संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका ने मान्यता दे दी। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव के तहत फिलिस्तीन का बंटवारा किया गया। फिलिस्तीन दो हिस्सों में बंट गया, (नकशा 1 देखें) पहला इज़रायल के नियंत्रण में जो मूल फिलिस्तीनी भू–भाग का 55 फीसदी था दूसरा, अरब देशों के नियंत्रण में, जिसमें भी बड़ा हिस्सा वेस्ट बैंक वाला ट्रांस जार्डन (आज का जार्डन) के तथा गाजा पट्टी वाला हिस्सा मिस्र के कब्जे में था।

दूसरे विश्व साम्राज्यवादी युद्ध के बाद अमेरिका साम्राज्यवादी विश्व का नेता बनकर उभरा था। ब्रिटिश साम्राज्य का पराभव हुआ था। एशिया में भी इसका सीधा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इज़रायल–फिलिस्तीन से अपने हाथ पीछे खींच लिये और उसकी भूमिका को शीघ्र ही अमेरिकी साम्राज्यवाद ने ग्रहण कर लिया। अरब देशों में खनिज तेल की खोज के साथ ही इस क्षेत्र ने अमेरिकी साम्राज्यवाद की निगाह में रणनीतिक महत्व हासिल कर लिया। यहूदी अरबपति अमेरिकी राजनीति में प्रभाव रखते ही थे, इसका समग्र नतीजा यह निकला कि इज़रायल को अमेरिका का भरपूर सहयोग व संरक्षण हासिल हो गया। यही वह समय भी था जब अरब राष्ट्रवाद अपने चरम पर था। तथा वो साम्राज्यवाद के विरोध में भंगिमाएं ग्रहण कर रहा था। पश्चिम एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवाद को इज़रायल के रूप में एक सशक्त सहयोगी मिल गया और अमेरिका ने भरपूर सैनिक–आर्थिक मदद इज़रायल को उपलब्ध कराई तथा पिछले पचास वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में संकट के हर अवसर पर इज़रायली शासक वर्ग को अविचल सहयोग प्रदान किया है। अमेरिकी साम्राज्यवाद इस मामले में दोहरे मापदण्ड अपनाने में कोई गुरेज नहीं करता है, एक तरफ तो इराक द्वारा कुवैत पर कब्जा करने पर वो उस पर आक्रमण कर देता है वहीं दूसरी तरफ इज़रायल द्वारा 1967 में पूरे फिलिस्तीन पर 1982 में लेबनान व सीरिया के कई हिस्सों पर कब्जा करने पर वो चुप्पी साधे रहता है। 1982 में इज़रायल ने इराक के नाभिकीय रियेक्टरों को हमला करके नष्ट ही कर डाला। पश्चिम एशिया में इज़रायल को अमेरिकी साम्राज्यवाद का वरदहस्त प्राप्त है, यह फिलिस्तीन की समस्या में बड़ी बाधा है। सारे किन्तु–परन्तु के साथ अमेरिकी साम्राज्यवाद पश्चिम एशिया से किसी भी सूरत से हटना नहीं चाहता है। वस्तुतः अमेरिकी साम्राज्यवाद की कोई इच्छा नहीं है कि समस्या हल हो। उसकी चौधराहट कम हो। सामाजिक साम्राज्यवादी सोवियत संघ के नब्बे में पत्तन के साथ पश्चिम एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवाद को मिल रहीं चुनौतियां हाल–फिलहाल समाप्त हो चुकी हैं। इसने इज़रायल की स्थिति को काफी मजबूत कर दिया है। फिलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष अपने सबसे कठिन दौर में इस वक्त है।

इज़रायल को अपनी स्थापना के समय अरब राष्ट्रों से तीखी चुनौती मिली थी। 1948–49 में ट्रांसजार्डन, मिस्र तथा फिलिस्तीन के अरबों के संयुक्त प्रयासों के जरिये यहूदियों को फिलिस्तीन से बाहर निकालने के प्रयास हुये। परन्तु अरबों को पराजय का मुंह देखना पड़ा। इज़रायल ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रस्तावित इज़रायली क्षेत्रों का विस्तार कर लिया (नकशा–2 देखें)। इसका परिणाम यह निकला कि अरब राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव को स्वीकारने तथा इज़रायल को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। गैले क्षेत्र पर पूरी तरह, वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी के बड़े हिस्से पर इज़रायल ने कब्जा कर लिया। इज़रायली फौजें जेरूशलम तक पहुंच गयीं। जेरूशलम इजरायल की घोषित राजधानी था। गाजा पट्टी का शेष हिस्सा

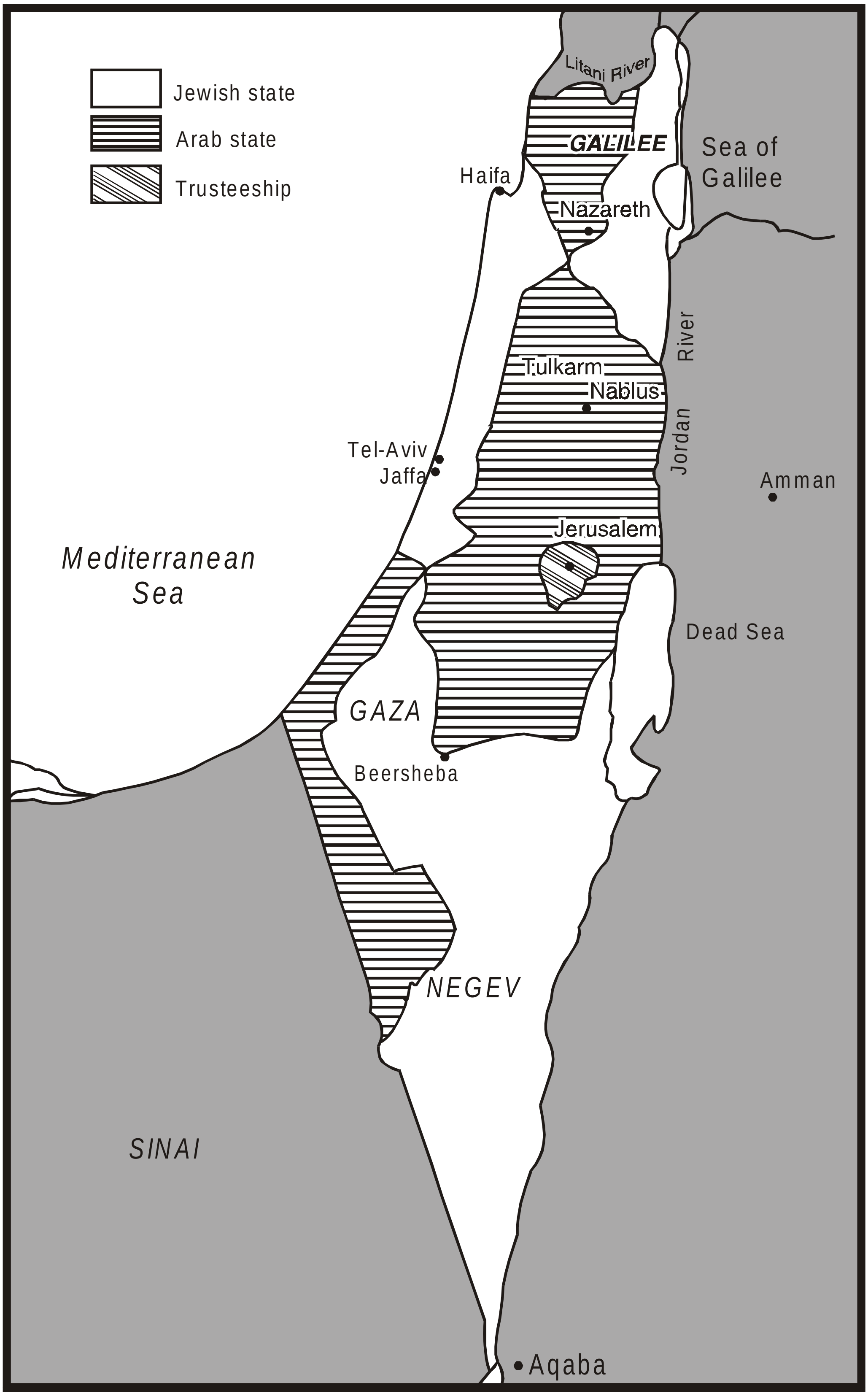

संयुक्त राष्ट्र संघ का 1947 में फिलिस्तीन के विभाजन का प्रस्ताव
(नकशा – 1)

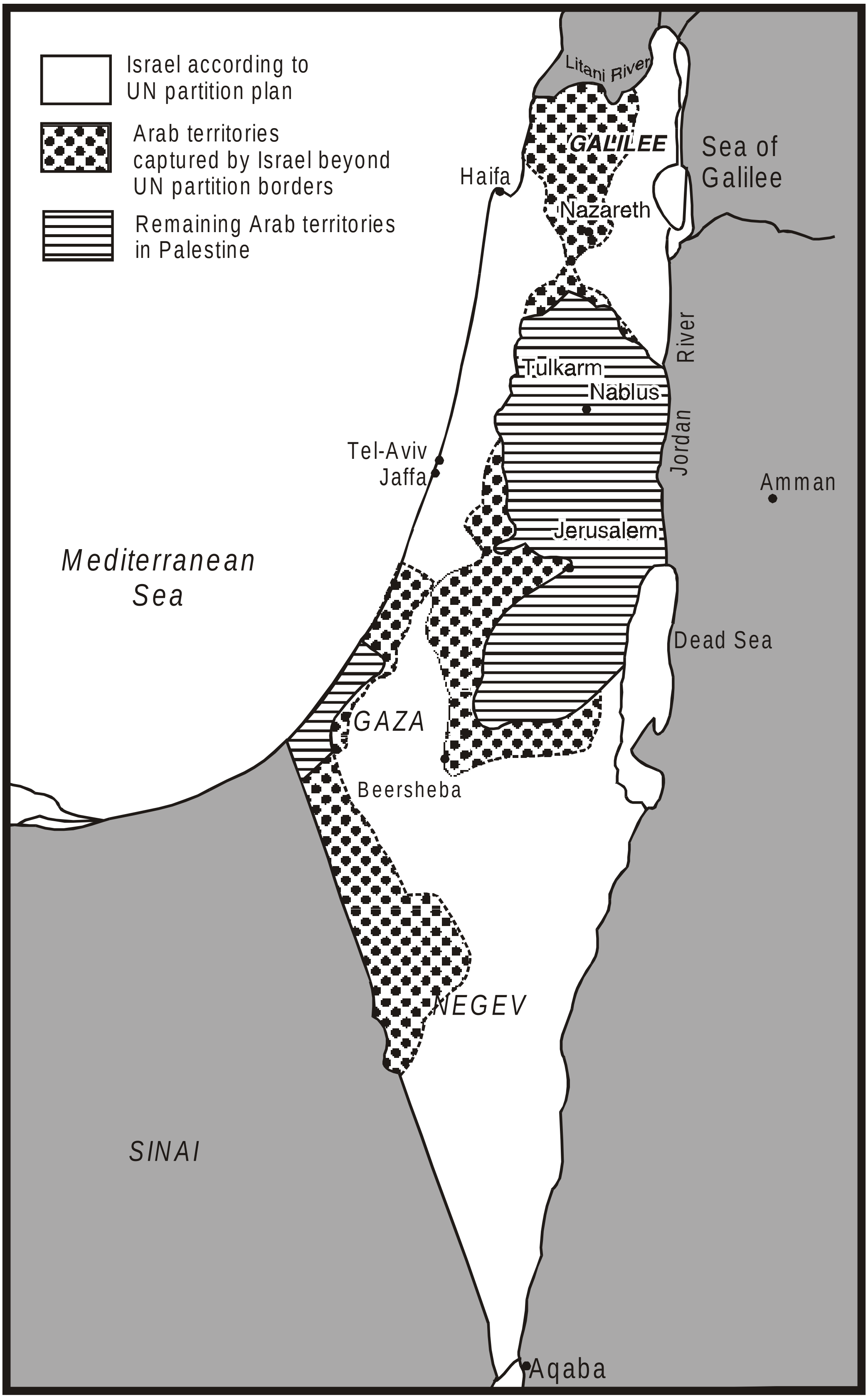

1948 और 1949 में इज़राइल द्वारा अधिकृत किया गया क्षेत्र (नकशा – 2)

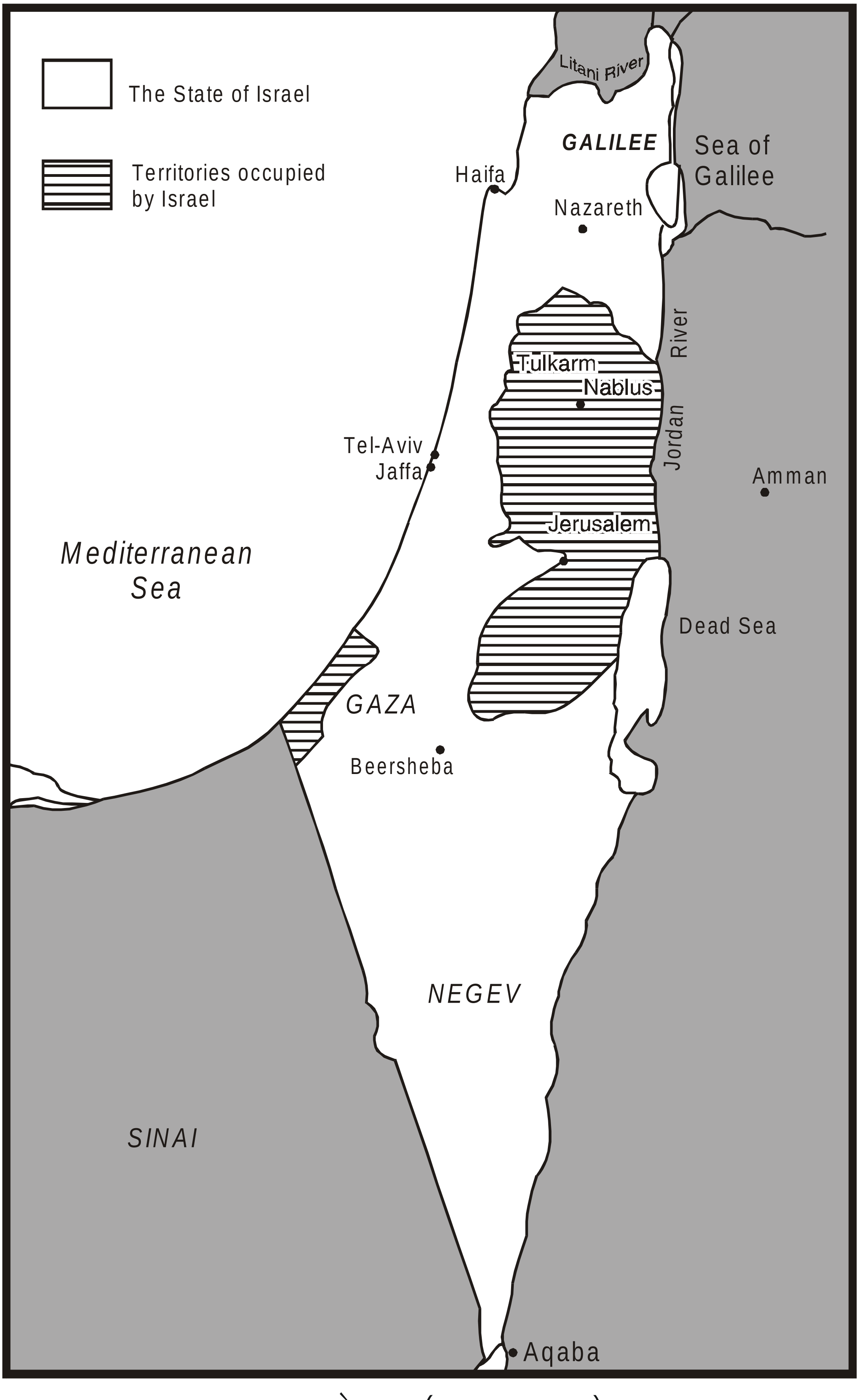

1967 के बाद (नकशा – 3)

मिस्र के तथा वेस्ट बैंक का शेष हिस्सा ट्रांसजार्डन के अधिकार में रहा। 1947–1948 में हुये युद्ध के दौरान फिलिस्तीनियों के खिलाफ इजरायलियों ने आक्रामक रूख अपनाया और मात्र दिसम्बर (1947) और जनवरी (1948) के दो महीनों में सात लाख फिलस्तीनी अरब शरणार्थी बन गये और वे फिलिस्तीन छोड़ने को बाध्य हुये। ये फिलिस्तीन में रह रही कुल अरब आबादी के लगभग आधे थे। फिलिस्तीनियों का यह प्रवजन जारी रहा।

फिलिस्तीनी पड़ोस के अरब मुल्कों में फैल गये। लेबनान, जार्डन, मिस्र उनके निवास के बड़े क्षेत्र रहे हैं तो सीरिया, इराक, कुवैत, सऊदी अरब आदि मुल्कों में आज भी वे बड़ी संख्या में रह रहे हैं। फिलिस्तीनी पड़ोस के मुल्कों में नागरिकविहिनता की स्थिति में रह रहे हैं। इन देशों में वे सस्ते श्रम के स्रोत बने हुये हैं। जार्डन पचास के दशंक में फिलिस्तीनियों का संरक्षक बना रहा और उसके राजा हसन की रूचि स्वतंत्र फिलिस्तीन राष्ट्र में कभी नहीं रही।

पचास का दशक अरब राष्ट्रवाद का दशक भी रहा है। नासिर के नेतृत्व में अरब राष्ट्रवाद विकसित हुआ। नासिर ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर ब्रिटिश व फ्रांसीसी साम्राज्यवाद को चुनौती दे डाली। लेकिन वह समय समाजवाद की विजय, राष्ट्रीय मुक्ति की धारा के बहाव तथा साम्राज्यवाद के पीछे हटने व कमजोर होने का दौर था। सीरिया और इराक में साम्राज्यवाद विरोधी बाथ पार्टियों का शासन इस दशक में कायम हुआ।

इज़रायल में रहने वाले फिलिस्तीनियों को यद्यपि इज़रायल की नागरिकता प्रदान की गयी लेकिन वे लगातार सैनिक निगरानी में थे। राजनैतिक मत व्यक्त करने तथा स्वतंत्रतापूर्वक कहीं भी आ जा सकने की उन्हें आज़ादी नहीं थी। मिस्र के अधीन वाले गाजा पट्टी में रहने वाले तथा जार्डन के अधीन वाले इलाकों में भी फिलिस्तीनियों की स्थिति दोयम दर्जे की थी, उन्हें लगातार भेदभाव का सामना करना पड़ रहा था। जार्डन का राजा मुक्तिकामियों को संदेह की नजर से देखता रहा। 1994 में फिलिस्तीन लिबरेशन आर्गेनाइजेशन (PLO) के गठन के बाद तो जार्डन में राजा हसन की फौजों तथा PLO के बीच हिंसक झड़पें आम हो गयीं और अन्त में 1970 में अधिकांश फिलिस्तीनियों को जार्डन छोड़ना पड़ा और लेबनान की ओर रूख करना पड़ा।

अरबों के बीच फिलिस्तीन पर प्रभुत्व को लेकर तीखे अन्तरविरोध के बावजूद इज़रायल के खिलाफ वे एकजुट थे। 1967 में मिस्र, जार्डन, सीरिया की संयुक्त फौजों ने इज़रायल पर आक्रमण कर दिया। इज़रायल की सैनिक ताकत के समक्ष ये देश ठहर नहीं पाये और 6 दिन के भीतर ही युद्ध समाप्त हो गया। इज़रायल ने मिस्र और जार्डन के कब्जे वाले गाजा पट्टी और वेस्ट बैंक के क्षेत्रों को अपने कब्जे में ले लिया (नकशा–3 देखें)। 1967 के इज़रायल–अरब के युद्ध में इज़रायल की श्रेष्ठता कायम हो गई। इज़रायल ने मिस्र, जार्डन व सीरिया के भी कई क्षेत्रों में कब्जा कर लिया।

1973 में मिस्र व सीरिया के नेतृत्व में इज़रायल के विरूद्ध एक युद्ध अरब राष्ट्रों ने लड़ा। मिस्र जहाँ इज़रायल द्वारा कब्जा किये गये सिनाई क्षेत्र को वापस चाहता था वहीं सीरिया गोलन की पहाड़ियों को वापस चाहता था। लेकिन युद्ध में मिस्र और सीरिया को शिकस्त का मुंह देखना पड़ा। अमेरिका और सोवियत संघ के हस्तक्षेप के बाद युद्ध तो थम गया पर इज़रायल ने मिस्र और सीरिया में अपनी बढ़त और बढ़ा ली।

1978 में मिस्र और इज़रायल के बीच, अमेरिका की मध्यस्थता में कैम्प डेविड की वार्तायें हुयीं जिसके तहत मिस्र ने इज़रायल राज्य को मान्यता दी, इज़रायल ने अपने कब्जे वाले सिनाई क्षेत्र को खाली किया।

1970 के बाद पी.एल.ओ. ने अपनी गतिविधियों का केन्द्र लेबनान को बनाया। बेरूत में पी.एल.ओ. ने फिलिस्तीनी शरणार्थियों के सहयोग से अपनी लड़ाई को तेज किया। इजरायल ने 1982 में लेबनान पर हमला कर दिया। बेरूत में किये गये हवाई हमले में सैंकड़ों लोग मारे गये। उसके बाद बेरूत में रह रहे फिलिस्तीनियों के शरणार्थी कैम्पों में इज़रायली फौजों के नेतृत्व में भयानक कत्लेआम किया गया। फिलिस्तीनियों को एक बार फिर लेबनान छोड़ने को बाध्य किया गया। इज़रायली फौजों ने पी.एल.ओ. के सारे आधार को नष्ट कर दिया।

1987 में इज़रायल के कब्जे वाले वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी में रह रही फिलिस्तीनी आबादी ने जन–विद्रोह कर दिया। इन्तिफादा के नाम से मशहूर हुये इस जन–विद्रोह ने इज़रायली शासकों को हिला कर रख दिया। इज़रायल के प्रतिक्रियावादी जियनवादी शासकों ने इस जन–विद्रोह को कुचलने में टैंको से लेकर हेलीकाप्टर तक से फायरिंग का सहारा

लिया, पर वे इस विद्रोह को दबाने में सफल नहीं हो पाये। आत्मोत्सर्ग की भावना से भरे फिलिस्तीनी नौजवानों ने इज़रायली दमनकारी फौजों को हैरान करना जारी रखा।

जन–संघर्ष के भारी दबाव तथा अन्तर्राष्ट्रीय जनमानस के दबाव के कारण अमेरिकी साम्राज्यवादी और इज़रायली शासकों ने पी.एल.ओ. से 1993 में ओस्लो समझौता किया जिसके तहत गाजा पट्टी ओर वेस्ट बैंक के जेरिचो इलाके में स्वायत्तता वाली फिलिस्तीन आथोरिटी की स्थापना हुई। बहुत ही सीमित अधिकार वाली यह फिलिस्तीनी आथोरिटी फिलिस्तीन की जनता से छल था। शीघ्र ही फिलिस्तीन के नौजवानों तथा मेहनतकशों का इससे मोहभंग हो गया। जनता ने प्रतिरोध करना शुरू कर दिया। यासिर अराफात की समझौतापरस्ती आलोचना का विषय बनती गयी।

सन् 2000 में इजरायल के प्रतिक्रियावादी शासन तथा दमन के खिलाफ दूसरा इन्तिफादा शुरू हुआ और जो विभिन्न रूपों में आज भी जारी है। फिलिस्तीनी जनता का संघर्ष साहसपूर्वक जारी है। पिछले दो साल में दो हजार से अधिक फिलिस्तीनी मारे गये हैं और हजारों की संख्या में लोग घायल हुए हैं। इज़रायली फौज (IDF) के द्वारा घरों को जमींदोज कर दिया गया और हजारों की संख्या में लोग इन उद्दण्डतापूर्वक की गई कार्यवाहियों के कारण बेघर हो गये हैं।

अमेरिकी साम्राज्यवाद आज विभिन्न चरणों से गुजरते हुए फिलिस्तीनियों को स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्र 2005 तक दिलाने का वादा कर रहा है। अमेरिकी बहुराष्ट्रीय तेल कम्पनियों के सक्रिय समर्थन तथा सहयोग से बना अमेरिका का राष्ट्रपति जार्ज बुश इराक के तेल पर अमेरिकी कम्पनियों का वर्चस्व चाहता है। इराक में दुनिया का दूसरा बड़ा तेल भण्डार है। सद्दाम हुसैन के बहाने जार्ज बुश प. एशिया में सैनिक हस्तक्षेप के बहाने तलाश रहा है। अपने कुत्सित मंसूबों की पूर्ति तक जार्ज बुश चाहता है कि फिलिस्तीन दुनिया के आकर्षण का केन्द्र न बनें और न ही कोई ऐसा घटनाक्रम विकसित हो जो उसके इरादों में बाधा पैदा करे। 2005 की लफ़्फ़ाजी का यह एक बड़ा कारण है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद ने 1998 में सैनिक सहायता के नाम पर 4.14 अरब डालर बांटे। इस रकम का 76.2 फीसदी हिस्सा प. एशिया में खर्च किया गया। और इस रकम का 43.4 फीसदी हिस्सा अकेले इज़रायल के शासकों को हासिल हुआ। यह मिस्र (31.4%) यूरोप (20.8%) तुर्की (10.9%) और लैटिन अमेरिका (1.8%) से कई गुना ज्यादा है। यह एक मात्र तथ्य,यह समझने के लिये काफी है कि इज़रायल अमेरिकी साम्राज्यवाद का कितना घनिष्ठ सहयोगी है।

प. एशिया के तेल भण्डारों तथा इसके भू–राजनीतिक महत्व को जितना अधिक अमेरिकी साम्राज्यवादी समझते हैं उतना ही यूरोप व जापान के साम्राज्यवादी भी समझते हैं। जर्मनी, फ्रांसीसी, रूसी, ब्रिटिश और जापानियों को इज़रायल जैसा देश प. एशिया में अपने कुत्सित इरादों के लिये उपलब्ध नहीं है। साम्राज्यवादियों के इस अन्तरविरोध की अभिव्यक्ति अपने चरम रूप में सुरक्षा–परिषद तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठको में होती है। जहाँ समय–समय पर इज़रायल और फिलिस्तीन के सन्दर्भ में प्रस्ताव लाये जाते हैं जिसमें इज़रायल की निन्दा होती है। इन प्रस्तावों का अमेरिका विरोध करता है, वीटो का इस्तेमाल करता है। जहां यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियां अक्सर इसका विरोध करती हैं वहीं ब्रिटिश ऐसे मौकों पर तटस्थ हो जाते है। हाल के महीनों में जार्ज बुश की फिलिस्तीनी जनता से यह अपील या धमकी कि वह यासिर अराफात के स्थान पर अपना कोई अन्य नेता चुनें, जिससे इज़रायल–फिलिस्तीन में तथाकथित शान्ति आ सके। बुश की इस बात का विरोध जनता के साथ–साथ यूरोप के साम्राज्यवादी शासकों ने यह कहकर किया कि यह अधिकार फिलिस्तीन की जनता का है कि वो किसे अपना नेता चुनें। जर्मनी, रूसी, फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों और यहाँ तक जापानी साम्राज्यवादी अपने–अपने स्वार्थों के लिये कम या ज्यादा प. एशिया में सक्रिय हैं। परन्तु इनमें से हर कोई जानता है कि जो भी ताकत प. एशिया के तेल भण्डारों और बाजार को अपने प्रभाव–नियंत्रण में लेगी, वही साम्राज्यवादी गला–काटू प्रतियोगिता में बढ़त हासिल करेगी। यही कारण है अमेरिकी साम्राज्यवादियों की इज़रायल,फिलिस्तीन व इराक सम्बन्धित नीतियों की मुखर आलोचना यूरोप में हो रही है। रूस,फ्रांस और जर्मनी के साम्राज्यवादी पश्चिम एशिया, भूमध्य सागर में अपनी खोयी हुई हैसियत और प्रभाव को दुबारा से प्राप्त करना चाहतें हैं। यही इच्छा कमोबेश अमेरिकी साम्राज्यवाद के घनिष्ठ सहयोगी ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की भी है।

III

इज़रायली शासकों का प्रतिक्रियावादी चरित्र

दुनिया भर में पूंजीपति वर्ग अपनी सारी प्रगतिशीलता खोकर अपने चरित्र में, समग्र रूप से प्रतिक्रियावादी हो चुका है। इज़रायली शासक वर्ग भी पूंजीपति वर्ग के इस आम चरित्र के अनुरूप प्रतिक्रियावादी हो चुका है। वह एक ऐसा प्रतिक्रियावादी वर्ग है जो अपने देश तथा फिलिस्तीनी जनता का दमन, शोषण तथा उत्पीड़न कर रहा है।

दमित व उत्पीड़न जाति (Race) के एक अलग राष्ट्र–राज्य की स्थापना आमतौर पर एक प्रगतिशील कदम है। 1948 में,इज़रायल दुनिया भर में सताये गये, उत्पीड़ित और अपमानित यहूदियों के स्वप्न का साकार रूप था। इस दृष्टि से इज़रायल की स्थापना ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील कदम था। इज़रायल एक बुर्जुआ राष्ट्र–राज्य के रूप में अस्तित्व में आया परन्तु इज़रायल की स्थापना ने एक उत्पीड़ित जाति के अलग राष्ट्र–राज्य की स्थापना के ऐतिहासिक कार्य को पूरा कर दिया। और इसके साथ ही यहूदी बुर्जुआ की ऐतिहासिक प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो चुकी थी। समग्र रूप में यह वर्ग प्रतिक्रियावादी इसी के साथ हो गया। उत्पीड़ित आम यहूदी जन–सामान्य की जनवादी आकांक्षाओं के दबाव के कारण यद्यपि इज़रायल में अपने पड़ोसी देशों के मुकाबले एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक बुर्जुआ व्यवस्था कायम हुई है। सार्विक–मताधिकार के आधार पर इज़रायली संसद–किन्सेट का चुनाव होता रहा है।

यहूदियों के व्यापक दमन, नरसंहार ने उन्हें जुझारू राष्ट्रवाद को अपनाने को बाध्य किया था। जुझारू राष्ट्रवाद जो एक समय में इसकी स्थापना में सहायक बना था वही जुझारू राष्ट्रवाद इज़रायली शासकों के प्रतिक्रियावादी होते ही अंधराष्ट्रवाद में तबदील हो गया। प्रगतिशील राष्ट्रवाद अंधराष्ट्रवाद में तबदील हो गया।

इज़रायल के शासक वर्ग ने अंधराष्ट्रवाद की भावनाओं को खूब जमकर बढ़ावा दिया। फिलिस्तीनियों के जनवादी हकों की बात करना या शान्ति का प्रचार करना, इज़रायल के भीतर देशद्रोह समझा जाता है। इज़रायल के प्रभुत्व वाले क्षेत्र में फिलिस्तीनी जनता के भयानक दमन को अंधराष्ट्रवादी शासकों द्वारा हर कदम पर जायज ठहराया जाता है। इज़रायल पिछले तीस वर्षो से शान्तिकामी नागरिकों और सैनिकों की आवाज को कुचलता रहा है।

1967 में इज़रायल ने समूचे फिलिस्तीन पर अपना कब्जा जमा लिया। इस तरह से फिलिस्तीनियों की आबादी दो हिस्सों में बंट गई, पहली जो कि इज़रायली नागरिक हैं उन्हें अक्सर इज़रायली अरब कहकर भी संबोधित कर दिया जाता है और दूसरी, इज़रायल के अधिकृत क्षेत्र गाजा पट्टी और वेस्ट बैंक में रहने वाली आबादी, जिसके पास वस्तुतः किसी किस्म के नागरिक अधिकार नहीं हैं यद्यपि इजरायल में बुर्जुआ लोकतंत्र है। इज़रायल अपने नागरिकों के साथ कानूनी या औपचारिक तौर पर बराबरी के व्यवहार की बात करता है,परन्तु इज़रायल में रह रहे फिलिस्तीनियों के साथ ऐसा नहीं है। राज्य और न्यायालय द्वारा उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है, उन्हें सन्दिग्ध निगाहों से देखा जाता है। वैधानिक तौर पर न्यायिक हिरासत में यंत्रणा देना जायज है। अधिकृत क्षेत्रों में रह रही आबादी तो वास्तव में इज़रायली सैनिक बलों के साये में जी रहीं है। स्वायत्तशासी क्षेत्र जो 1993 के ओस्लो समझौते के बाद अस्तित्व में आये उनमें इज़रायली फौजें जब चाहें तब घुसती हैं। मनवांछित जगहों की नाकाबन्दी और नेताओं की गिरफ्तारी और नजरबन्दी करती है। तथाकथित आतंकवादियों का किसी भी वक्त कत्ल करती है। दूसरे इन्तिफादा के बाद से हैलिकाप्टरों से गोलीबारी और टैंकों से बमबारी कर फिलिस्तीनियों की बस्तियों को नेस्तानाबूद करना आम बात हो गयी है। इज़रायली सेनायें किसी भी वक्त बस्तियों को घेर कर पूरी आबादी को जमीन पर लेटाकर, घर–घर की तालाशी लेती हैं और मनचाहे आदमियों को निर्ममतापूर्वक कत्ल कर देती है। फिलिस्तीनियों के गाँवों और शहरी बस्तियों को उजाड़ कर यहूदी आबादी को बसाना पिछले बीस सालों में एकदम आम हो चुका है। वेस्ट बैंक में तो जार्डन नदी के किनारे–किनारे बीसियों यहूदी बस्तियां बसा दी गयीं हैं। इसी तरह जेरूशलम में फिलिस्तीनियों को उजाड़कर यहूदी बस्तियां बसा दी गयी हैं। यही हाल गाजा पट्टी का है। वेस्ट बैंक में उत्तरी सिरे से लेकर दक्षिणी सिरे तक तथा पश्चिमी सीमा से पूर्वी सीमा तक कई राजमार्गो का निर्माण किया गया है। और इन राजमार्गो के इर्द–गिर्द यहूदी बस्तियों को बसाना जारी है। ये बातें इस बात की ओर इशारा करती हैं कि इज़रायली शासक वर्ग किसी भी तरह फिलिस्तीनी सम्प्रभु राष्ट्र की स्थापना नहीं होने देना चाहता है। अरेल शोरेन इस आशय के व्यक्तव्य देता ही रहा है।

अरेल शोरेन घोषित तौर पर वृहत्तर इज़रायल का पक्षधर है, जिसका अर्थ है जार्डन नदी के किनारे से लेकर भू–मध्य सागर तथा लेबनान से लेकर अक्वाया की खाड़ी तक फैला इज़रायल । इस इज़रायल में फिलिस्तीनी अधिक–से–अधिक दोयम दर्जे के नागरिक ही हो सकते हैं। इज़रायली शासक वर्ग तो फिलिस्तीनियों को जब तब "दो पाये वाले जानवर" कहता रहा है।

इज़रायली शासक वर्ग वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी को अपने आर्थिक स्वाथों के कारण खाली नहीं करना चाहते हैं। गाजा पट्टी और वेस्ट बैंक का इज़रायल की अर्थव्यवस्था में बड़ा योगदान है। इज़रायल की मैन्यूफैक्चरिंग तथा श्रम संघनित उद्योग (Labour Intensified Industy) के लिये वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी में रह रहे फिलिस्तीनी सर्वहारा सस्ते श्रम के स्रोत हैं। इस विशाल सस्ते श्रम के स्रोत को इज़रायल नहीं खोना चाहता है। ये ऐसे सर्वहारा हैं जिनको नागरिक अधिकार भी हासिल नहीं हैं। वेस्ट बैंक का हिस्सा पूरे इज़रायल में सबसे अधिक उपजाऊ है। कृषि उपज देने के साथ–साथ यहां पानी के स्रोत हैं। इज़रायल में पानी का अभाव है। वेस्ट बैंक के स्रोतों से पानी शेष इज़रायल में सप्लाई किया जाता है। पानी, कृषि योग्य भूमि और सस्ते श्रम के स्रोतों को प्रतिक्रियावादी इज़रायली बुर्जुआ वर्ग किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहता।

इज़रायली शासक वर्ग का प्रतिक्रियावादी चरित्र एक अन्य ढंग से परिलक्षित होता रहा है। इज़रायली शासक वर्ग दुनिया भर में सबसे घोर प्रतिक्रियावादी शासकों–तानाशाहों का लम्बे समय से मित्र रहा है और उन्हें सलाह देता रहा है कि वे अपने देश में कार्यरत जनपक्षधर शक्तियों से इज़रायली शासकों की तर्ज पर निपटें। निकारागुआ, दक्षिण–अफ्रीका के प्रतिक्रियावादी शासकों को वह अस्सी के दशक में सैनिक और आर्थिक सहायता अमेरिकी साम्राज्यवाद के इशारे पर मुहैया करता रहा है। इज़रायल दुनिया में हथियार बेचने वाले प्रमुख देशों में बन गया है। इससे ये भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा कमा रहा है।

फिलिस्तीन के प्रगतिशील राष्ट्रवादी आन्दोलन को कुचलने के लिये इज़रायली शासक वर्ग लम्बे समय से इस्लामिक कट्टरपंथी संगठनों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायता देता रहा है। हमास जैसे संगठनों को खड़ा करने में तो इज़रायल का सीधा हाथ रहा है। इज़रायली शासकों का कट्टरपंथियों को इसलिये समर्थन मिलता रहा है ताकि पी.एल.ओ. का नेतृत्व कमजोर हो और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों पर विश्वास करने वाला यह संगठन बिखर जाये। यहां एक अन्य बात पर अवश्य गौर किया जाना चाहिये कि यहूदी कट्टरपंथी धार्मिक नेताओं को इज़राइली राज्य द्वारा भरपूर सहयोग दिया गया है। कट्टरपंथी यहूदी धार्मिक नेता और उनकी पार्टियां यहूदियों की धार्मिक भावनाओं को भड़काती रही हैं और वे इस बात की पक्षधर हैं कि फिलिस्तीनियों को फिलिस्तीन से खदेड़ दिया जाये। इज़रायली सेना द्वारा की जाने वाली घृणित कार्यवाहियों का ये खुला समर्थन करते रहे हैं। यहूदियों के दोनों अलग–अलग धार्मिक कट्टरपंथी नेता इस मामले में समय–समय पर एक दूसरे से बढ़–चढ़कर बयान देते रहे हैं। यहूदी कट्टरपंथ इस्लामिक कट्टरपंथ को भड़काता है और ये दोनों ही एक दूसरे के कंधे पर सवार होकर आगे बढ़ते है। यहूदी धार्मिक कट्टरपंथ की चर्चा इज़रायली शासक वर्ग और अमेरिकी साम्राज्यवाद भूलकर भी नहीं करता है और दुनिया में इस सच्चाई को छुपाता है।

इज़रायल के प्रतिक्रियावादी शासकों ने 1985 में इज़रायली संसद किनसेट में एक बिल पास कर, ऐसी किसी भी राजनैतिक पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा दिया जो कि यहूदी विरोधी हो। यहूदी विरोध का अर्थ राष्ट्र–विद्रोह घोषित कर दिया गया। इस तरह इज़रायल के जियनवादी शासकों ने किसी भी जियनवाद विरोधी दल के बनने व संगठित होने का जनवादी अधिकार ही छीन लिया। यह इज़रायल के शासक वर्ग के प्रतिक्रियावादी होते जाने की ही एक अन्य अभिव्यक्ति है।

इज़रायली समाज के अंतरविरोध

इज़रायली समाज एक पूंजीवादी समाज है। हर पूंजीवादी व्यवस्था की तरह ही इज़रायली पूंजीवादी व्यवस्था चौतरफा राजनैतिक–आर्थिक संकट की शिकार है। जहां वर्गीय अंतरविरोध दिनों–दिन तीखे होते जा रहे हैं वहीं शासक वर्ग आपसी कलह में उलझा हुआ है। शासक वर्ग की एकजुटता–फिलिस्तीनियों के दमन और इज़रायल के भीतर शासक वर्ग की आम नीतियों के खिलाफ होने वाले जनविरोध को दबाने को लेकर हैं हालांकि उसमें भी उनके बीच दमन करने को लेकर डिग्रियों का फर्क है या प्रक्रिया को लेकर मतभेद हैं।

इज़रायल में दर्जनों राजनैतिक पार्टियां हैं। ये सभी शासक वर्ग के किसी हिस्से या गुट का प्रतिनिधित्व करतीं हैं। आज के इज़रायली समाज में मजदूर वर्ग का आन्दोलन संगठित और प्रभावशाली नहीं है। क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के

अभाव में लगभग 23 लाख की संख्या वाला मजदूर वर्ग जो कि इज़रायल की एक तिहाई आबादी से अधिक बनता है,दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी राजनीति के प्रभाव में है। शासक वर्ग इज़रायली समाज में मेहनतकशों के आन्दोलन न पनपने देने और उन्हें दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी राजनीति की जकड़बंदी में बनाये रखनें के लिये सचेत प्रयास करता है। अन्धराष्ट्रवादी व यहूदी कट्टरपंथी भावनाओं का प्रचार करता है। मजदूरों के दोनों प्रमुख ट्रेड यूनियन सेन्टर शासक–वर्गीय राजनीति के प्रभाव में हैं।

इज़रायल में बसे विभिन्न देशों से आये यहूदियों के बीच अंतरविरोध काफी तीखे हैं। यह अन्तरविरोध ओरियन्ट बनाम आक्सीडेंट के रूप में व्यक्त होता है या दूसरे शब्दों में कहा जाय तो यूरोपीय बनाम एशियाई के रूप में। यूरोप, अमेरिका से आये यहूदी इज़रायली समाज के शासक वर्ग के मुख्य हिस्से हैं तथा अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के कारण इज़रायली शासक वर्गीय राजनीति में छाये हुए हैं। ये अपने को श्रेष्ठ तथा उच्च सांस्कृतिक अभिरूचि का मानते हैं। और ये इज़रायल में पहले से बसे यहूदियों तथा भू–मध्य सागर और एशिया–यूरोप के पिछड़े इलाकों से आये यहूदियों को पिछड़ा और निम्न सांस्कृतिक अभिरूचि का मानते है जबकि ये यहूदी मेहनतकशों का बड़ा हिस्सा बनते हैं। पहले वाला समूह असकेनाइजिक (Ashkenazic) और दूसरा सेफारडिक (Safardic) कहलाता है। इन दो तरह के यहूदियों की अपनी–अपनी धार्मिक संस्थायें और अलग–अलग प्रमुख धर्मगुरू (रब्बी) है। धार्मिक कट्टरतावाद और प्रतिक्रियावाद के ये मुख्य स्रोत हैं। इसके अलावा यहूदी समाज का अंतरविरोध एक अन्य रूप भाषा और विभिन्न देशों से आये समूहों के रूप में व्यक्त होता है। यद्यपि राष्ट्रीय कामकाज और मान्यता प्राप्त भाषा हिब्रू है। परन्तु पोलिश, रूसी, अंग्रेजी भाषा बोलने वाले अलग–अलग समूह हैं। जिनके अपने अखबार, टी.वी. चैनल हैं। 1990 के बाद रूस से आये यहूदी, इज़रायली शासक वर्गीय राजनीति में प्रमुख गुट के रूप में, पिछले दस वर्षो में उभरे हैं। अपनी भाषायी और सांस्कृतिक पहचान बनाये रखने के लिये ये समूह लगातार संघर्षरत हैं और प्रतिक्रियावादी राजनीति तथा अन्धराष्ट्रवादी रूझानों को ये उर्वरक जमीन मुहैया कराते हैं।

अक्टूबर–नवम्बर 2002 में इज़रायली शासक वर्ग के अन्तरविरोध तीखे रूप में सामने आ गये। कई दलों से बनी "राष्ट्रीय सरकार" से लेबर पार्टी ने अपना समर्थन वापस ले लिया। लेबर पार्टी ने घोषित तौर पर लिकुड पार्टी के नेता और प्रधानमंत्री अरेल शोरेन की वेस्ट बैंक में लगातार बसायी जाने वाली यहूदियों की बस्ती तथा उनको दी जाने वाली बड़ी धनराशि से डांवाडोल होती अर्थव्यवस्था का सवाल उठाया। बढ़ते सामाजिक संकट को देखते हुए लेबर पार्टी ने तर्क दिया कि यहूदियों की नई बस्तियों के बजाय धन मजदूर वर्ग की सामाजिक सुरक्षा पर खर्च किया जाना चाहिये। लेबर पार्टी की यह "चिंता" जनवरी–फरवरी 2003 में होने वाले चुनावों तथा अपने खोते जनाधार को लेकर ज्यादा है। लेबर पार्टी फिलिस्तीनियों से समझौते पर जोर देती रही है वहीं लिकुड पार्टी, शाह पार्टी और अन्य घोर दक्षिणपंथी गुट किसी भी तरह के समझौते के खिलाफ हैं और कठोर नीति के ये पक्षधर सारे फिलिस्तीनियों को देश से खदेड़ देना चाहते हैं। भविष्य में लेबर पार्टी के नेतृत्व में फिलिस्तीनियों से अगर समझौता होता है तो एक ऐसा फिलिस्तीनी राष्ट्र कायम होगा जो कि पूर्ण रूप से इज़रायल के सैनिक–आर्थिक प्रभाव में होगा और जिसके स्थान–स्थान पर यहूदी बस्तियां होगी। यहूदी बस्तियों से छिद्रित ऐसा राष्ट्र होगा जो कि अपनी सम्प्रभुता को भी सुरक्षित नहीं रख सकता है, वहां अन्य दल इसके भी सख्त खिलाफ हैं।

इज़रायली समाज का राजनैतिक संकट उसके गहराते आर्थिक संकट की भी अभिव्यक्ति है। इज़रायली अर्थव्यवस्था भी विश्वव्यापी मन्दी का शिकार है। सन् 2000 में आर्थिक विकास की दर जहां दो फीसदी थी वहीं बेरोजगारी की दर 8 फीसदी थी। ये आंकड़े दो वर्ष पुराने हैं। हाल में ही हिन्दू अखबार (7 नवम्बर 2002) में छपे एक लेख के अनुसार पिछले 15 महीनों में वास्तविक आय में 75 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई है। जो कि इज़रायल के इतिहास में सबसे तेज गिरावट है। इसी लेख के अनुसार आज इज़रायल में 11 लाख से अधिक व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं। जबकि इज़रायल की आबादी लगभग 61 लाख है। दूसरे इन्तिफादा ने इज़रायली अर्थव्यवस्था को सीधे प्रभावित किया है। इज़रायल में विदेशी पूंजी निवेश घटा है, इज़रायल में आने वाले पर्यटकों की संख्या भी घटी है। इज़रायल का व्यापार घाटा लगातार बढ़ता गया है।

इज़रायल एक बड़ी फौज को बना के रखा हुआ है। 61 लाख की आबादी वाले देश में लगभग दो लाख की फौज है। इज़रायल दुनिया के उन देशों में से है जिनका सैनिक खर्च सबसे ज्यादा है। सैनिक खर्च सकल राष्ट्रीय उत्पाद का जहां विश्व में औसतन 2.6% है वहां इज़रायल का सैनिक खर्च सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 9.7%, 1999 में था। यह दुनिया में सबसे ज्यादा है। यह विशाल सैनिक खर्च इज़रायली शासक वर्ग के इज़रायल में प्रतिक्रियावादी शासन तथा फिलिस्तीन के अधिकृत क्षेत्रों में सैनिक शासन के काम आता है।

फिलिस्तीनी समस्या को हल करने के लिये इज़रायली समाज में मौटे तौर पर दो दृष्टिकोण मौजूद हैं। जियनवादी शासक वर्गीय दृष्टिकोण जो कि यह कोशिश करता रहा है कि सभी फिलिस्तीनियों को इज़रायल से भगा दिया जाये और इज़रायल का सम्पूर्ण फिलिस्तीन पर कब्जा हो। किसी भी तरह स्वतंत्र सम्प्रभु फिलिस्तीनी राज्य कायम न हो। यद्यपि शासक

वर्ग के विभिन्न धड़ों और पार्टियों में इस सवाल को लेकर कुछ मतभेद भी हैं जो अपने आप को समय–समय पर व्यक्त करते रहते हैं; जिनकी चर्चा की जा चुकी है। शासक वर्ग का सबसे उदार हिस्सा भी मात्र ऐसे फिलिस्तीनी राज्य के लिये तैयार होता है, जो एक तरह से यहूदी बस्तियों और इज़रायली फौज से घिरा हुआ होगा।

फिलिस्तीन की समस्या के प्रति दूसरा दृष्टिकोण जनता का है। जो उसके हितों को भी व्यक्त करता है। जनता का व्यापक हिस्सा शान्ति चाहता है जो कि रोज–रोज की हिंसा से त्रस्त हो चुके हैं। इज़रायल की जनता का यह हिस्सा फिलिस्तीनी राष्ट्र–राज्य के पक्ष में है। सैनिकों से लेकर मजदूरों तक इस दृष्टिकोण से अपनी सहमति व्यक्त करते रहे हैं। 1978 में फिलिस्तीनियों और पड़ोसी देशों में लड़ रहे इज़रायली सैनिकों ने "अविलम्ब शान्ति" नाम से एक गुट बनाया था जो कि जो कि किसी न किसी रूप में इज़रायली सेना में अब भी मौजूद है। समय–समय पर इज़रायली सैनिक फिलिस्तीनियों के क्रूर दमन और अपमान से क्षुब्ध होकर अपना असंतोष व्यक्त करते रहे हैं। इसी तरह इज़रायल में होने वाले छोटे–बड़े शान्ति प्रदर्शन इस मानसिकता को व्यक्त करते रहे हैं। यद्यपि सर्वहारा दृष्टिकोण इतना ही नहीं है,उसका फलक इससे कही बड़ा है। सर्वहारा दृष्टिकोण के अनुसार फिलिस्तीनियों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाना चाहिये तथा जिसमें अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के स्वायत्तशासी क्षेत्र बनाये जा सकते हैं तथा इसी तरह आत्मनिर्णय का अधिकार इज़रायल को भी हो, और इन सबसे मिलकर फिलिस्तीनी–इज़रायली समाजवादी संघ सर्वहारा के नेतृत्व में कायम हो। सर्वहारा जनवाद वाला ऐसा समाजवादी समाज ही फिलिस्तीन की समस्या का वास्तविक समाधान होगा और यह समाजवादी संघ भविष्य में समूचे अरब राष्ट्रों को अपने में समेट लेगा।

IV

अरब के विभिन्न देशों के शासकों की प्रतिक्रियावादी भूमिका

फिलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष में अरब के विभिन्न देशों के शासकों की भूमिका घोर प्रतिक्रियावादी रही है। अरब के विभिन्न देशों के शासक, फिलिस्तीनियों का इस्तेमाल अपने संकीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थो को बढ़ाने से लेकर अपने–अपने देशों में जन–संघर्षो को कुचलने और भटकाने के लिये करते रहे हैं। फिलिस्तीनी जनता और उनके संघर्ष उनके लिये एक यंत्र (Tools) और हथियार की तरह रहे है। मिस्र, सीरिया,जार्डन के शासकों ने अपने–अपने देशों में साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, शेखशाही और सामन्तशाही के खिलाफ अलग–अलग समय में चलने वाले प्रगतिशील आन्दोलनों को दबाने और भ्रष्ट करने के लिये फिलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष का इस्तेमाल किया। और इस संघर्ष को इस रूप में चित्रित और प्रचारित किया कि यह राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष न होकर धार्मिक संघर्ष है। यहूदीवाद के खिलाफ संघर्ष है,धार्मिक संघर्ष–जेहाद है। वस्तुतः यही इज़रायल का प्रतिक्रियावादी शासक और साम्राज्यवाद चाहता रहा है। इज़रायल के प्रतिक्रियावादी शासकों के लिये भी इससे धार्मिक उन्माद पैदा करना और अपने पीछे मेहनतकशों को कतारबद्ध करना सम्भव होता रहा है। प. एशिया के धार्मिक–कट्टरता और धार्मिक–उन्माद के माहौल को पैदा करने और बनाये रखने में अरब और इज़रायल के प्रतिक्रियावादी शासकों का भरपूर योगदान रहा है और इनके इससे घृणित हित सधते रहे हैं।

अरब के शासकों और शेखों में फिलिस्तीन का उद्धारक बनाने की जबर्दस्त महत्वाकांक्षा रही है और इसके लिये इनके बीच तीखी प्रतिद्वन्द्विता रही है। जार्डन, मिस्र, सीरिया के शासक अलग–अलग समय में "मुक्तिदाता" बनने के प्रयास करते रहे हैं। यद्यपि इनके ही राष्ट्रों में फिलिस्तीनियों का जबर्दस्त शोषण–उत्पीड़न होता रहा है। दोयम दर्जे की नागरिकता की स्थिति में जी रहे फिलिस्तीनी सस्ते श्रम के स्रोत बने हुये हैं। शरणार्थी कैम्पों में तो सामान्य नागरिक सुविधाओं का भी घोर अभाव होता है। फिलिस्तीनी संघर्ष के बहाने, अपने हितों के कारण साम्राज्यवाद इन देशों को आर्थिक–सैनिक सहायता उपलब्ध कराता रहा है। इज़रायली जियनवादी प्रतिक्रियावादी शासन के खिलाफ साम्राज्यवाद और इन देशों का प्रतिक्रियावादी शासन भी फिलिस्तीन की जनता की राष्ट्रीय मुक्ति में सबसे बड़े अवरोध बने हुये हैं।

'67 और '73 के अरब–इज़रायल युद्धों में अरब के शासकों को अपमानजनक पराजयों का शिकार होना पड़ा। इज़रायल की सैनिक श्रेष्ठता प. एशिया में कायम हो गई। जहां इज़रायल को अमरीकी साम्राज्यवाद और यूरोप के साम्राज्यवादियों का समर्थन और सहयोग हासिल रहा वहीं अरबों के पीछे सोवियत साम्राज्यवादी थे। '70 के दशक में अरब के विभिन्न देशों और इज़रायल के सम्बंधों में बदलाव आना षुरू हुआ। '70 के दशक से ही मिस्र ने अमरीकी साम्राज्यवाद से

सटना शुरू किया और इज़रायल से समझौते करने षुरू किये। अरब और इज़रायल के शासकों के सम्बंधों में आने वाले परिवर्तनों का प्रतिकूल असर फिलिस्तीनियों के मुक्ति संघर्ष पर भी पड़ना शुरू हुआ। जार्डन, मिस्र और सीरिया को प्रातिनिधिक उदाहरण मानकर हम अब इन देशों की फिलिस्तीनियों के प्रति अपनायी गई प्रतिक्रियावादी भूमिका की चर्चा करेंगे।

जार्डन,1988 से पहले तक जार्डन जेरूशलम और वेस्ट बैंक को अपना हिस्सा मानता था और पी.एल.ओ. को फिलिस्तीनियों के प्रतिनिधि के बतौर मान्यता नहीं देता था। जार्डन के शाह हसन का फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के प्रति नकारात्मक और प्रतिक्रियावादी नज़रिया रहा है। जार्डन का शासक वर्ग फिलिस्तीनियों की लड़ाई को किसी राष्ट्रीय मुक्ति के तौर पर नहीं देखता था। क्योंकि 1967 के अरब–इज़रायल के युद्ध के बाद जेरूशलम और वेस्ट बैंक जार्डन के कब्जे में थे,जिस पर युद्ध के पहले इज़रायल ने कब्जा कर लिया था,अतः उसे यह क्षेत्र वापस मिलने चाहिये। इज़रायल के साथ के अपने संघर्ष को इसी रूप में व्यक्त करता था और फिलिस्तीन मुक्ति योद्धाओं तथा पी.एल.ओ. को अपने इन विस्तारवादी मंसूबो को पूरा करने के बतौर देखता था।

1964 में जन्में फिलिस्तीनियों के व्यापक संगठन पी.एल.ओ. ने जब उसका हथियार बनने और किंग हसन को अपना भाग्य विधाता मानने से इन्कार कर दिया तो शाह हसन ने 1970 में पी.एल.ओ. के कार्यकर्ताओं और उसके समर्थकों का कत्लेआम करवा दिया। शाह हसन ने इज़रायल व अमेरिका से अपने सम्बन्ध सुधारने के लिये पी.एल.ओ. को जार्डन छोड़ने को बाध्य कर दिया। फिलिस्तीनी मुक्ति योद्धाओं की उपस्थिति जार्डन के प्रतिक्रियावादी शासन के खिलाफ थी। फिलिस्तीनी मुक्ति योद्धाओं के साथ जार्डन की जनता की बढ़ती एकजुटता स्वयं जार्डन के प्रतिक्रियावादी शासन के खिलाफ थी। जार्डन के शासकों ने फिलिस्तीनियों और इज़रायली शासको के बीच में, इज़रायली शासकों को चुना।

1970 के बाद जार्डन और इज़रायल के शासकों के सम्बंधों में उत्तरोत्तर घनिष्ठता बढ़ती गई। अरब राष्ट्रों और इज़रायल की बीच होने वाले संघर्षों में वो तटस्थ बना रहा। 1973 के मिस्र, सीरिया और इज़रायल युद्ध तथा 1982 में लेबनान व सीरिया पर इज़रायल के आक्रमण के समय वो तटस्थ रहा। पिछले कुछ वर्षो में इज़रायल तथा जार्डन के शासकों के सम्बंध और अधिक गहरा गये और उनके बीच गहराते अर्थिक सम्बंधों का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होने विशेष औद्योगिक क्षेत्रों का निर्माण वेस्ट बैंक में किया है। इज़रायल के साथ अपने सम्बंधों को सुधारने का फायदा जार्डन को एक अन्य रूप में भी मिला। अमरीकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इसके लिये शाह हसन की पीठ ठोंकी, उसके कर्जे माफ किये और भारी मात्रा में अनुदान दिया।

मिस्र। नासिर '50 के दशक में अरब राष्ट्रवाद के प्रखर समर्थक और साम्राज्यवाद के जुझारू विरोधी के रूप में उभरे थे। नासिर के नेतृत्व में अरब राष्ट्रवादी रूझानों ने जोर पकड़ा था। तीसरी दुनिया के बुर्जुआ जी के हितों को ध्यान में रखते हुये, जन्में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापकों में एक नासिर ने 1956 में स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इससे वे अरब राष्ट्रवाद के नायक बनकर उभरे। 1956 में ब्रिटेन, फ्रांस, इज़रायल ने मिस्र पर आक्रमण कर दिया लेकिन नासिर डटे रहे। यह समय समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति का था। साम्राज्यवाद पीछे हट रहा था।

तीसरी दुनिया के सभी नवोदित बुर्जुआ शासकों की तरह नासिर का शासन जनविराधी और प्रतिक्रियावादी था। नासिर ने जहां कम्युनिस्टों के निर्मम दमन की नीति अपनायी वहीं अपने नियंत्रण वाले क्षेत्र गाजापट्टी में फिलिस्तीनियों का जबरदस्त दमन कर उनके जनवादी अधिकारों का हनन भी किया।

नासिर ने इज़रायल के प्रति आक्रामक नीति अपनायी और दशकों तक इज़रायल को मान्यता नहीं दी। 1967 में मिस्र के नेतृत्व में अरब–इज़रायल युद्ध हुआ। 6 दिनों के भीतर अरब सेनाओं को अपनी पराजय स्वीकारनी पड़ी। 1967 में हुई हार के बाद नासिर का करिश्मा और अरब राष्ट्रवाद का नारा अपनी चमक खोने लगा। 1970 में उसकी मौत के बाद अनवर सद्‌दात मिस्र का राष्ट्रपति बना। उसने मरते अरब बुर्जुआ राष्ट्रवाद के घोड़े की फिर सवारी की। 1973 में सीरिया के साथ मिलकर इज़रायल के खिलाफ 'योम कूपर' का युद्ध लड़ा परन्तु न तो मिस्र, गाजा पट्टी व सिनाई क्षेत्र को वापस पा सका, और न ही सीरिया गोलन पहाड़ियों को वापस पा सका।

बदलती हुई विश्व परिस्थिति को भांपकर मिस्र के बुर्जुआ शासकों ने अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ निकटता बढ़ानी शुरू की। मिस्र अमेरिकी साम्राज्यवाद का बाद के दशकों में करीबी बनता चला गया। आज पूरी दुनिया में इज़रायल के बाद

वह सबसे अधिक सैनिक सहायता अमेरिका से पाता है। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने मिस्र और इज़रायल के प्रतिक्रियावादी शासकों की सुलह कराई, जिसका नतीजा 1978 की कैम्प डेविड वार्ता और समझौते के रूप में सामने आया। 1978 में इज़रायल को मान्यता देने के साथ मिस्र ने फिलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्षो से, अपने आपको अलग कर लिया। और जार्डन के शासकों की तरह ''तटस्थ'' हो गया। 1978 में मिस्र को सिनाई क्षेत्र वापस मिल गया और जार्डन के बाद फिलिस्तीनियों को मिस्र के बुर्जुआ शासकों की गद्दारी को झेलना पड़ा। फिलिस्तीनियों का एक और "मुक्तिदाता" इज़रायल के शासकों का बगलगीर बन गया।

जार्डन और मिस्र दोनों के लिये ही फिलिस्तीनी एक हथियार थे जिससे वे अपनी प्रतिक्रियावादी आकांक्षाओं की पूर्ति चाहते थे। मिस्र के प.एशिया में विस्तारवाद के मंसूबों पर इज़रायल ने पानी फेर दिया था। मिस्र ने 1958 में सीरिया के साथ मिलकर संयुक्त अरब गणतंत्र (United Arab Republic) का गठन किया था,परन्तु मिस्र और सीरिया के बुर्जुआ शासकों के आपसी कलह और स्वार्थो के कारण मात्र तीन वर्षो में ही उसका पतन हो गया। मिस्र अपने आप को संयुक्त अरब गणतंत्र कहता रहा, सीरिया उससे 1961 में अलग हो गया। प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ अरब राष्ट्रवाद का यही भविष्य था।

सीरिया। सत्तर व अस्सी के दशक में सीरिया सामाजिक साम्राज्यवाद का मुख्य सहयोगी प.एशिया में बना रहा। 1990 में सामाजिक साम्राज्यवाद के पतन के बाद सीरिया क्षेत्रीय स्तर पर प्रभावहीन हो गया है। पी.एल.ओ. के गठन के बाद, सीरिया बाथ पार्टी में अपने समर्थक गुटों के द्वारा पी.एल.ओ. को अपने प्रभाव में लाने के प्रयासों में संलग्न रहा था। लेबनान में सीरिया समर्थित गुट प्रभावशाली स्थिति में रहे हैं। सीरिया और इज़रायली से घिरा लेबनान, सीरिया, इराक, जार्डन, इज़रायल के अलावा अमेरिकी साम्राज्यवाद और सोवियत साम्राज्यवाद के हितों का लम्बे समय तक रणक्षेत्र बना रहा। '67 व '73 के युद्धों में इज़रायल के हाथों मिली पराजय का एक नतीजा यह निकला कि सीरिया का प्रभाव प. एशिया में कमजोर होता गया और इज़रायल आज भी सीरिया के एक हिस्से को दबा कर बैठा है।

यहाँ एक अन्य बात की चर्चा करना साथ–साथ ही आवश्यक है, वह है, भारत जैसे देशों की फिलिस्तीन के मुक्ति युद्ध के प्रति बदलता रूख। भारत का शासक वर्ग दशकों से फिलिस्तीन के मुक्ति युद्ध का समर्थक रहा है। फिलिस्तीन गुट निरपेक्ष आन्दोलन का भी सदस्य रहा है। परन्तु पिछले एक दशक में भारत के शासक वर्ग की नीतियों में बड़ा परिवर्तन आया है। भारत के इज़रायल के साथ सैनिक, कूटनीतिक, आर्थिक सम्बंध गहराते चले गये हैं। आज इज़रायल भारत को हथियार सप्लाई करने वाले प्रमुख देशों में से एक है। भारत का प्रतिक्रियावादी शासक वर्ग भी आज इज़रायल के साथ अपनी घनिष्ठता बढ़ाता जा रहा है और यह उसके चरित्र के अनुरूप ही है।

V

समाजवाद की वक्ती पराजय और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का संकट में फंसना

जब तक दुनिया में सशक्त समाजवादी आन्दोलन तथा समाजवादी देश मौजूद थे, तब तक राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की धारा भी बलवती थी। कम्युनिस्टों के नेतृत्व में तमाम देशों में राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष चल रहे थे। तमाम तीसरी दुनिया के राष्ट्रों ने समाजवादी देशों के सहयोग से अपने राष्ट्र निर्माण का कार्य भी किया। राष्ट्र मुक्ति के संघर्ष जहां साम्राज्यवाद के पिछवाड़े को कमजोर कर रहे थे, वहीं समाजवाद, साम्राज्यवाद को सीधे सामने से चुनौती दे रहा था। बीसवीं सदी में राष्ट्रीय मुक्ति एक प्रमुख गति बनी हुई थी।

राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को पहला झटका सोवियत संघ में 1956 में हुई पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के साथ लगा। शान्ति–नाभिकीय युद्ध–निशस्त्रीकरण आदि नारों की आड़ में सोवियत संघ ने अमेरिकी साम्राज्यवाद से अपने रिश्ते सुधारने शुरू किये। सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना तथा 1968 आते–आते उसके सामाजिक साम्राज्यवादी देश में तबदील हो जाने से सोवियत संघ स्वयं तीसरी दुनिया के राष्ट्रों का उत्पीड़क और शोषक बन गया। सोवियत साम्राज्यवाद औपचारिक तौर पर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षो का दुनिया में कई स्थानों पर समर्थन करता था। परन्तु वो अब ऐसा अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की पूर्ति के लिये एक माध्यम व आड़ के रूप में करता था। शनै–शनै सोवियत साम्राज्यवाद अमेरिकी साम्राज्यवाद से प्रभुत्व को लेकर कई स्थानों पर उलझता चला गया, जिसके कारण दुनिया भर में चल रहे कई मुक्ति संघर्ष साम्राज्यवादी अन्तर–प्रतिद्वन्द्विता के शिकार हो गये। साम्राज्यवादियों की आपसी होड़ ने इन मुक्ति संघर्षो को पहले से कई गुना मुश्किल बना दिया। अलग–अलग देशों में चल रहे मुक्ति संघर्षों में साम्राज्यवादी खेमों ने अपने–अपने गुट बना लिये। साम्राज्यवदियों की आपसी प्रतिद्वन्द्विता से उन देशों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षो में फायदा भी होता रहा है जहां पर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन सशक्त रहा है। ऐसे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के नेता और संगठन साम्राज्यवाद के अन्तर विरोधों का अपने हितों को बढ़ाने में इस्तेमाल कर सके हैं और राष्ट्रीय मुक्ति को हासिल करने के बाद, अपने राष्ट्र निर्माण में इसका लाभ कई देशों ने उठाया।

राष्ट्रीय मुक्ति की धारा को दूसरा गहरा झटका तब लगा जब चीन में में भी 1976 में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो गई। चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना से राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष ने अपना एक विश्वनीय सहयोगी और समर्थक खो दिया। चीन में समाजवाद की समाप्ति के साथ ही, चीन ने भी साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका को त्यागकर, साम्राज्यवाद के साथ सांठ–गांठ शुरू कर दी। चीन के पूंजीवादी पथगामी शासकों के हित व स्वार्थ भी इससे जुड़े हुये थे।

बीसवीं सदी का अन्त आते–आते मुख्य तौर पर दुनिया में औपनिवेशिक, शासन से राष्ट्रीय मुक्ति का कार्य पूरा हो चुका था। आज तीसरी दुनिया के अधिकांश देश साम्राज्यवाद के साथ औपनिवेशिक नव–औपनिवेशिक सम्बंधों में न बंधे होकर आर्थिक नव–औपनिवेशिक सम्बंधों में बंधे हैं। आज राष्ट्रीय मुक्ति की धारा समाजवादी धारा में विलीन हो गई है। पूंजीवाद विरोधी समाजवादी क्रान्ति ही राष्ट्रीय मुक्ति के बचे–खुचे कार्यों को पूरा करेगी। सर्वहारा के नेतृत्व में होने वाली समाजवादी क्रान्ति पूंजीवाद का मूलोच्छेदन करने के साथ साम्राज्यवाद से भी निर्णायक विच्छेद करेगी। लेकिन जिन देशों में अभी राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष चल रहे हैं वहां का मुख्य कार्य आज भी अपनी राष्ट्रीय मुक्ति हासिल करना है। यद्यपि यह आज की दुनिया की मुख्य गति नहीं है। आर्थिक नव औपनिवेशिक चरण में साम्राज्यवाद के मुख्यतः पँहुचने के बावजूद पुराने चरणों के कार्यभार बचे हुये हैं। फिलिस्तीन साम्राज्यवाद के पुराने चरण की ही एक समस्या है। शास्त्रीय अर्थों में उपनिवेश नहीं होने के बावजूद फिलिस्तीन की स्थिति उपनिवेश की ही बनी हुई है। इज़रायली शासक वर्ग फिलिस्तीनियों के साथ औपनिवेशिक शासकों की तरह ही व्यवहार करता है। उसी तरह शोषण, दमन,उत्पीड़न करता है। साम्राज्यवादी शक्तियों का नेता अमेरिका इसमें इज़रायली शासकों के साथ बराबर में खड़ा है।

समाजवाद की वक्ती पराजय का मुक्ति संघर्षो पर काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। तमाम देशों में चल रही राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई साम्राज्यवाद द्वारा फैलाये गये समझौते के मकड़–जाल में उलझ गई है। हाल में पूर्वी तिमोर को इण्डोनेशिया से मिली "मुक्ति" पूर्णतया साम्राज्यवाद समर्थित थी। फिलिस्तीन का मुक्ति संघर्ष भी आज इसी अवस्था का शिकार है। साम्राज्यवाद के षडयंत्रों और इज़रायली जियनवादी शासकों के प्रतिक्रियावादी कदमों को अगर दुनिया के पैमाने पर समाजवादी शक्तियों से तीव्र चुनौती मिल रही होती तो फिलिस्तीनी अपने राष्ट्र की प्राप्ति काफी पहले कर चुके होते। दुनिया में मजदूर वर्ग के शिथिल पड़े संघर्षो से फिलिस्तीन की जनता का मुक्ति संघर्ष और ज्यादा कठोर परिस्थितियों में पहुंचता जा रहा है। समाजवादी आन्दोलन जैसे ही अपनी धूल–गर्त झाड़कर उठ खड़ा होता है वैसे ही फिलिस्तीन की जुझारू संघर्षरत जनता को भी अपने अभीष्ट की प्राप्ति में मदद शुरू हो जायेगी।

VI

वर्तमान परिस्थितियों में फिलिस्तीन का भविष्य

घातों–प्रतिघातों से घिरा हुआ फिलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष दिनों–दिन तीव्र होता जा रहा है। उसके साथ ही इज़रायली शासकों का दमन भी तेज होता जा रहा है। इज़रायल का प्रधानमंत्री अरेल शोरेन जो कि 1982 में सबारा और सहतिला कैम्पों के कत्लेआम का अपराधी है एक से अधिक बार घोषणा कर चुका है कि वह ओस्ले समझौते को नहीं मानता जिससे गाजापट्टी और जेरिचो इलाके में स्वायत्तशासी क्षेत्र की स्थापना हुई थी। अरेल शोरेन को इज़रायल में फिलिस्तीनियों के गाँवों और बस्तियों को बुलडोजर से मिट्टी में मिलाने के कारण उसे जनता द्वारा, बुलडोजर नाम ही दे दिया गया है। आज यह क्रूर प्रधानमंत्री इस बात पर अफसोस प्रकट कर रहा है कि क्यों उसने 20 वर्ष पूर्व यासिर अराफात का काम तमाम नहीं किया। यासिर अराफात को फिलिस्तीन आथोरिटी की बिल्डिंग में कई दिनों तक कैद रखा जाता है। इमारत को गोलाबारी कर बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया जाता है। पिछले कुछ महीनों में ही मरने वालों की संख्या हजारों में पहुंच चुकी है।

अमेरिका निर्ल्लजतापूर्वक इज़रायल के साथ खड़ा है। अमेरिकी साम्राज्यवाद फिलिस्तीनियों पर शर्तो पर शर्ते थोप रहा है और साथ ही घोषणा कर रहा है कि इन शर्तो का पालन करने पर 2005 तक फिलिस्तीन राष्ट्र बन सकता है। इन शर्तो में एक प्रमुख शर्त है कि फिलिस्तीन इज़रायल के खिलाफ आत्मसुरक्षा की कार्यवाहियां बन्द कर दे क्योंकि इज़रायल और अमेरिका के शासकों की निगाहों में ये आतंकवादी हरकतें हैं। यद्यपि यहीं पर इज़रायल की हर क्रूर दमनात्मक कार्यवाहियों का अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा इज़रायल को आत्मसुरक्षा का अधिकार है, कहकर समर्थन किया जाता है। फिलिस्तीनी जनता पूरी तरह से विद्रोह में उतरी पड़ी है। वहीं फिलिस्तीनियों के बीच कार्यरत् कई कट्टर इस्लामिक संगठन इज़रायल की तर्ज पर ही उसको जवाब देते हैं, इनमें से कई को तो खड़ा करने में स्वयं इज़रायल और अमेरिका का हाथ रहा है। हाल के वर्षों में फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष और एक हद तक पी.एल.ओ. में इस्लामिक कट्टरपंथियों का प्रभाव बड़ा है, जो कि चिन्ताजनक है।

इज़रायल वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी में निर्माण कार्य जारी रखा हुआ है और जहां स्थान–स्थान पर यहूदी बस्तियों को बसाया जा रहा है। गाजा पट्टी और वेस्ट बैंक के फिलिस्तीनी एक दूसरे छोर पर है और जिसके बीच में विस्तृत इज़रायली क्षेत्र है। बुश और शेरोन जिस फिलिस्तीनी राष्ट्र के लिये तैयार भी होंगे वो वस्तुतः अपनी सम्प्रभुता को भी हासिल नहीं कर सकता है। वेस्ट बैंक व गाजा पट्टी में सैंकड़ों यहूदी बस्तियों और इज़रायल की फौजों की उपस्थिति के बीच, ऐसा फिलिस्तीनी राष्ट्र कैसे अपनी सम्प्रभुता को बना कर रखेगा। कोई प्रस्ताव अगर आज भी फिलिस्तीनियों और इज़रायल की जनता के साथ न्याय करता है तो वह है 1947 का संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रस्ताव है जिसमें दोनों ही राष्ट्रों का प्रावधान था। और जो कमोबेश आज अगर लागू किया जाता है तो फिलिस्तीनी राष्ट्र अपनी क्षेत्रीय एकता, अक्षुण्णता और सम्प्रभुता को हासिलकर सकता है। इज़रायल के शासक तो ओस्लो जैसे कमजोर प्रस्ताव को ठुकराने पर जहाँ आमादा हैं वहां वह 1947 के प्रस्ताव पर तो आज की परिस्थितियों में तैयार नहीं होगें। ऐसे में, भविष्य में किसी दबाव और अपनी समझौतापरस्ती के कारण यासिर अराफात और पी.एल.ओ. तैयार हो जाते हैं तो जो भी फिलिस्तीनी राष्ट्र कायम होगा, वो बेहद कटा–फटा, इज़रायल के प्रभुत्व वाला तथा फिलिस्तीन की संघर्षरत मुक्तिकामी जनता के साथ छल करने वाला ही साबित होगा। दूसरें शब्दों में कहा जाये तो उसके बाद भी फिलिस्तीनी राष्ट्र के निर्माण का कार्यभार बना रहेगा।

फिलिस्तीनियों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा पड़ोसी देशों में निर्वासित है, ये शरणार्थियों का जीवन जी रहे हैं। जार्डन, लेबनान, सीरिया, मिस्र, इराक, लीबिया में रहने वाले फिलिस्तीनी अपनी प्रबल राष्ट्रीय आकांक्षाओं और जनवादी विचारों के कारण इन देशों के तानाशाहों–शेखों के खिलाफ, इन देशों की जनता की चेतना को आगे बढ़ाते हैं। ये सस्ते श्रम के स्रोत हैं, और इन समाजों में सबसे कठोर श्रम इनके हिस्से में आता है। "घेट्टो" में जिदंगी बिता रहे ये फिलिस्तीनी बगैर जमीन और स्पष्ट सीमा–रेखा के अस्तित्व में आये फिलिस्तीनी राष्ट्र के स्वघोषित हिस्से हैं। अमेरिकी साम्राज्यवाद की छत्र–छाया में इज़रायल और पी.एल.ओ. यदि किसी समझौते पर पहुंचते हैं तो इस बड़ी आबादी का क्या होगा, यह एक अनुत्तरित्त प्रश्न है। इन नागरिकता विहीन नागरिकों को क्या उसी तरह से फिलिस्तीन में बसने और नागरिकता ग्रहण करने का अधिकार होगा, जैसे कि इज़रायल में किसी भी यहूदी को प्राप्त है चाहे वो दुनिया में किसी भी देश का नागरिक हो।

फिलिस्तीनी जनता भी वर्गों में बंटी हुई है। फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन का नेतृत्व मूलतः बुर्जुआ और निम्न बुर्जुआ वर्ग के हाथों में है। यह संगठन की विचार सीमा, आंदोलन के नेतृत्व में पनपे अवसरवाद, निराशा और समझौतापरस्ती का एक प्रमुख कारण है। यह संगठन की शासकवर्गोन्मुखी राजनीति ओर साम्राज्यवाद के प्रति मोहग्रस्तता का भी परिचायक है। साम्राज्यवाद के प्रति स्पष्ट और सही अवस्थिति पी.एल.ओ. द्वारा न ग्रहण करने से फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष गम्भीर भटकावों का शिकार होता रहा है। फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन वर्षो तक सोवियत संघ के समर्थन में अपनी लड़ाई लड़ता रहा था। सोवियत संघ '70 व '80 के दशक में अपने साम्राज्यवादी हितों के लिये पी.एल.ओ. का इस्तेमाल करता रहा है। पी.एल.ओ. की शासकवर्गोन्मुखी राजनीति की विवशता अपने बुर्जुआ नेतृत्व के कारण ही बन जाती है और यह इसके पड़ोसी देशों की जनता के सक्रिय समर्थन में बाधक भी है। दूसरे इन्तिफादा के समय पी.एल.ओ.के नेतृत्व में कायम फिलिस्तीनी आथोरिटी के कुशासन और भ्रष्टाचार के खिलाफ भी जनता का गुस्सा फूटा था। पी.एल.ओ. के नेतृत्व में किसी राष्ट्र का जन्म होता है तो जनता का उससे मोहभंग होने में मामूली समय भी नहीं लगेगा।

फिलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष बीसवीं सदी के प्रमुख जुझारू राष्ट्रवादी संघर्षो में रहा है। यह एक हथियारबंद संघर्ष रहा है। हथियारबंद संघर्ष होने के चलते ही पी.एल.ओ. इज़रायल के प्रतिक्रियावादी शासकों को गम्भीर चुनौती पेश कर सका है।

फिलिस्तीनी जनता की संघर्षशीलता को देखा जाये तो यह इतिहास के महान जनसंघर्षो की श्रृंखला में खड़ी है। 1987 का इन्तिफादा और सन् 2000 के इन्तिफादा ने यह साबित कर दिया है कि *"जनता ही वास्तविक वीर है"*। *"जनता ही असली सृजक है"*। इन्तिफादा की घटनाओं ने साबित कर दिया कि निहत्थी जनता भी क्रूर से क्रूर शासकों और उत्पीड़कों का बहादुरीपूर्वक सामना कर सकती है, और करती रही है। पापुलर कमेटियों का इन्तिफादा में उठ खड़ा होना, जनता की संगठनबद्ध होने की क्षमता को दर्शाता है। और यह दिखलाता है जनता अपने बीच से जुझारू नेतृत्व पैदा कर सकती है।

इन्तिफादा की घटनाओं ने ही यह साबित किया है कि जनता किस तरह की मुक्ति चाहती है। पी.एल.ओ. की समझौतापरस्ती के खिलाफ भी जनता आक्रोशित हो उठी थी।

दशकों से चल रहे फिलिस्तीनी जनता के संघर्ष और विशेषकर इन्तिफादा की घटनाओं से एक बात और साबित होती है कि बगैर क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के जनता के शक्तिशाली जन–संघर्ष भी सही नेतृत्व के अभाव में मार्गच्युत हो जाते हैं। यद्यपि फिलिस्तीन में कम्युनिस्ट पार्टी का गठन 1923 में ही हो चुका था परन्तु कम्युनिस्टों का नेतृत्व फिलिस्तीन मुक्ति संगठन में स्थापित नहीं हो सका। मिस्र, सीरिया के कम्युनिस्टों की तरह ही फिलिस्तीनी कम्युनिस्ट भी विभिन्न तरह के विचारधारात्मक विभ्रमों के शिकार होकर सोवियत संघ के संशोधनवादी नेतृत्व के बगलगीर हो गये, जिससे पी.एल.ओ. में सर्वहारा नेतृत्व के स्थान पर बुर्जुआ नेतृत्व स्थापित हो गया और सही सर्वहारा नेतृत्व के अभाव में फिलिस्तीनी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष बुर्जुआ अवसरवाद, समझौतापरस्ती का शिकार हो साम्राज्यवादी और जियनवादी शासकों के जाल में फंस कर रह गया है। फिलिस्तीन जनता के मुक्तिसंघर्ष का एक अन्य नतीजा दुनिया के तमाम क्रान्तिकारियों के लिये यह निकलता है कि बिना सर्वहारा नेतृत्व के, सही विचारधारा मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा के आधार पर गठित कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के कोई भी जनसंघर्ष चाहे वो कितना ही सशक्त क्यों न हो, अपने अभीष्ट को प्राप्त नहीं कर सकता है।

❑ ❑ ❑